RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2024

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम् ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 3 जून-जुलाई-अगस्त-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

स्मृतियों और अर्थशास्त्र में नारी के आर्थिक अधिकारों की विवेचना

राजीव कुमार शर्मा
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

स्मृतियों और अर्थशास्त्र में नारी के आर्थिक अधिकारों का महत्व स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—मानव जीवन की चार प्रमुख दिशाएँ हैं। इनमें धर्म आध्यात्मिकता और सजीवन का आधार है, जबकि अर्थ जीवन की धुरी के समान है। मानव के समग्र विकास और सामाजिक, नैतिक, एवं आध्यात्मिक प्रगति में अर्थ का महत्व अनिवार्य है। अर्थ के बिना मनुष्य न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता, बल्कि अन्य पुरुषार्थों की सिद्धि भी असंभव हो जाती है।

इतिहासिक दृष्टि से देखें तो स्मृतिकारों और अर्थशास्त्रज्ञों ने नारी के आर्थिक पक्ष पर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने स्त्रियों के दायभाग, संपत्ति में उनके अंश, स्त्रीधन, भरण-पोषण, दहेज और वैवाहिक संबंधों में उनके आर्थिक अधिकारों का विवेचन किया। यह केवल संपत्ति के अधिकार तक सीमित नहीं था, बल्कि आर्थिक स्वावलम्बन और सामाजिक सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता था। स्मृतियों में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि नारी को अपने धन का अधिकार है, और परिवार या पति द्वारा उसका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

इस दृष्टि से नारी के आर्थिक अधिकारों का अध्ययन केवल ऐतिहासिक या धार्मिक महत्व का नहीं है, बल्कि यह आधुनिक सामाजिक और कानूनी संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक है। स्मृतियों एवं अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में नारी के आर्थिक अधिकारों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि भारतीय समाज ने प्राचीन काल से ही नारी की स्वायत्तता, सुरक्षा और सम्मान को महत्व दिया है। यह अध्ययन न केवल हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्य को समझने में सहायक है, बल्कि आधुनिक महिला अधिकारों और समानता के सिद्धांतों के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करता है।

सम्पत्ति एवं उत्तराधिकार में नारी के अधिकार :

सम्पत्ति और उत्तराधिकार का विचार वैदिक काल से भारतीय सामाजिक और धार्मिक परंपरा में मौजूद है। प्रारंभिक वेदों में 'दाय' शब्द का प्रयोग संपत्ति में हिस्से या पुरस्कार के अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद (10.114.10) में 'श्रमस्य दाय विभजन्त्येभ्य:' में दाय शब्द का उपयोग किया गया है, जिसका तात्पर्य है भाग या पुरस्कार। अन्यत्र 'शतदाय' शब्द का अर्थ अधिक संपत्ति या वसीयत के रूप में व्याख्यायित किया गया है। इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद में दाय के अर्थ में प्रयुक्त दूसरा शब्द 'रिक्थ' भी

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

पाया जाता है।

ब्राह्मणग्रंथों और तैतिरीय संहिता में 'दाय' शब्द पैतृक सम्पत्ति के संदर्भ में प्रयोग किया गया है, जबकि अथर्ववेद में 'दायाद' का अर्थ उस व्यक्ति से है जो पैतृक संपत्ति का अधिकारी होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में इसे इस प्रकार परिभाषित किया है कि दाय वह धन है जो स्वामी के संबंध से किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति बन जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि पैतृक संपत्ति संबंधियों—जैसे पुत्र और पौत्र—में उनके संबंध के कारण वितरित की जाती थी।

स्त्री के सम्पत्ति अधिकारों के संदर्भ में स्मृतियों का दृष्टिकोण मिश्रित और सीमित रहा है। यद्यपि कुछ स्मृतिकारों ने पुत्री को पुत्र के समान माना है, फिर भी आर्थिक अधिकारों के क्षेत्र में उसका स्थान बहुत न्यून था। अधिकांश स्मृतिकार पुत्रियों के दायाधिकारों के विषय में मौन रहते हैं। जिन स्मृतिकारों ने पुत्रियों को सम्पत्ति में अधिकार दिया, उन्होंने भी उन्हें पुत्रों के समान पूर्ण अधिकार नहीं, बल्कि केवल अल्प अंश का अधिकारी बनाया। इस प्रकार स्मृतियों में नारी की आर्थिक स्वायत्तता पर सीमाएँ स्पष्ट रूप से देखी जाती हैं।

स्त्री के सम्पत्ति अधिकारों को मुख्य रूप से दो मूल रूपों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) स्त्री सम्पदा :- यह वह संपत्ति है जो नारी को पुत्री, पत्नी या विधवा के रूप में किसी विशेष अवसर पर प्राप्त होती है। इसमें उत्तराधिकार या विभाजन के पश्चात मिलने वाली संपत्ति भी शामिल है।

(2) स्त्रीधन :- यह वह धन है जो पुत्री अपने विवाह के अवसर पर अपने पितृजनों से प्रेम या स्नेह के रूप में प्राप्त करती है। यह एक प्रकार से व्यक्तिगत आर्थिक स्वायत्तता का आधार प्रदान करता है।

स्त्री सम्पदा और सम्पत्ति अधिकारों का विवेचन तीन प्रमुख चरणों में किया जा सकता है:

(क) पुत्री के रूप में सम्पत्ति का अधिकार -

पुत्रियों के सम्पत्ति अधिकार विषयक विवेचना में मनुस्मृति का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। प्रारंभिक रूप से मनु ने पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार नहीं दिया, परन्तु कुछ नवीन व्यवस्थाएँ इस सम्बन्ध में अवश्य प्रस्तुत की हैं। उनका यह कथन कि माता को विवाह आदि अवसर पर जो धन प्राप्त हुआ वह अविवाहित कन्याओं का ही भाग होता है, पुत्री के अधिकार का संकेत देता है।

मनु के दृष्टिकोण में कुछ विरोधाभास भी दिखाई देते हैं। एक स्थान पर वे पुत्रहीन मृतक पुरुष की सम्पत्ति का भाग पिता या भाई को मानते हैं, जबकि अन्यत्र पुत्र को पिता की आत्मा मानते हुए पुत्री को पुत्र के समान स्थान देते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पुत्री के लिए दायाद या अधिकार स्वीकार करने का मनुस्मृति में संकेत मौजूद है।

टीकाकारों ने इस कथन का विश्लेषण करते हुए 'पुत्रिका' (पुत्री की विशेष स्थिति) के अर्थ में व्याख्या की। यह व्याख्या विशेष रूप से पुत्रहीन पिता द्वारा कन्यादान के समय की व्यवस्थाओं से समर्थित है। मनु ने भाईयों में विभाजित सम्पत्ति में अविवाहित कन्याओं के लिए चतुर्थांश देने की व्यवस्था की है। यदि भाई ऐसा न करें तो वे पतित माने जाते हैं। इसके अलावा किसी भाई के मृत्यु या संन्यास लेने पर उसका हिस्सा सहोदर भाई-बहनों में बांटने का विधान भी किया गया।

मनु ने पुत्रियों के लिए माता के रिक्थ में भी अधिकार दिया। उन्होंने पुत्री को नाना की संपत्ति में से कुछ हिस्सा देने का प्रोत्साहन किया, विशेषकर जब पुत्र नहीं होता, तब दौहित्र (पोती) को भी समान महत्त्व दिया। इस दृष्टि से मनु ने पौत्र और दौहित्र के अधिकार में अभेद स्थापित किया, जो पुराने नियमों की अपेक्षा एक महत्वपूर्ण नवाचार है।

डा. के.पी. जायसवाल इस बात का समर्थन करते हैं कि मनु की यह नवीन व्यवस्था कन्याओं के प्रति उनके स्नेहभाव का परिणाम है। इस प्रकार, मनुस्मृति में पुत्रियों को संपत्ति में अधिकार देने की नीति सीमित, परन्तु स्नेहपूर्ण और संरक्षित दृष्टिकोण का परिचायक है।

(ख) पत्नी का सम्पत्ति अधिकार

भारतीय संस्कृति में पत्नी की सामाजिक और धार्मिक स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण मानी गई है। वह पुरुष की अर्धांगिनी और गृहस्वामिनी के रूप में परिवार और गृहस्थ जीवन को सुशोभित करती है। इसके बावजूद, सम्पत्ति और आर्थिक अधिकारों के क्षेत्र में उसकी स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर और सीमित दिखाई देती है।

मनुस्मृति के अनुसार पत्नी की अपनी कोई स्वतंत्र सम्पत्ति नहीं होती। मनु का कथन है कि स्त्री, पुत्र और दास—तीनों निर्धन माने गए हैं। इनका धन, जो वे स्वयं उपार्जित करते हैं, उन्हीं का होता है। पति की पैतृक संपत्ति में पुत्रों को दायांश या हिस्सा निश्चित रूप से मिलता है, किन्तु पत्नी को किसी भी प्रकार का हिस्सा नहीं दिया गया है। अत: पति की संपत्ति में पत्नी का कोई अधिकार नहीं माना गया और उसे आर्थिक दृष्टि से पूर्णत: निर्भर रखा गया।

इस प्रकार, पत्नी की सामाजिक और पारिवारिक महत्ता के बावजूद, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और संपत्ति में अधिकार सीमित रह गए। यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में पत्नी का अधिकार केवल पति के संरक्षण और स्नेह पर आधारित था, न कि कानूनी या संपत्तिपरक समानता पर।

(ग) विधवा का सम्पत्ति अधिकार

भारतीय समाज में नारी के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विधवा स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय और आर्थिक रूप से असुरक्षित रही है। स्मृतियों और अर्थशास्त्र में पुत्री और पत्नी की तुलना में विधवा के अधिकार और भी सीमित दिखाई देते हैं। प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों जैसे तैत्तिरीय संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में स्त्री को सम्पत्ति के स्वामित्व के योग्य नहीं माना गया। संयुक्त परिवार प्रणाली और नियोग की स्वीकृति के कारण सम्पत्ति पुरुष से पुरुष तक आसानी से हस्तांतरित हो जाती थी, और स्त्रियों को केवल सम्पत्ति की देखभाल का कार्य सौंपा जाता था।

मनुस्मृति के अनुसार, विधवा स्त्री पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं मानी जाती। पुत्र ही संपत्ति के अधिकारी होते हैं, पुत्रहीन होने पर क्रमश: अन्य पुरुष संबंधी—जैसे पिता, भाई या सपिण्ड—धन के अधिकारी बनते हैं। विधवा का नाम इस क्रम में नहीं आता।

कालक्रम में विधवाओं के उत्तराधिकार की माँग पर धीरे-धीरे बल दिया गया। विष्णु ने पुत्रहीन मृतक के मामले में विधवा को सम्पत्ति में उत्तराधिकारी मानने की स्वीकृति दी। याज्ञवल्क्य ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए पुत्रहीन मृतक की सम्पत्ति में विधवा को प्राथमिक उत्तराधिकारी घोषित

किया। आचार्य बृहस्पति ने भी विधवा को पति की मृत्यु के पश्चात सम्पत्ति का प्रथम दायाद देने का विधान किया। उनके अनुसार, पत्नी पति की अर्धांगिनी होती है, अत: उसका अधिकार मृतक पति की सम्पत्ति पर भी बनता है।

इसके विपरीत, आचार्य कौटिल्य ने विधवाओं को सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वञ्चित किया। उन्होंने कहा कि यदि किसी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो, तो वह राजा के अधिकार में चली जाती है, और केवल विधवा के भरण-पोषण एवं श्राद्ध कर्मों के लिए कुछ धन छोड़ा जाता है। इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि नारी, जो पति की अर्धांगिनी मानी जाती है, उसकी मृत्यु के पश्चात जीवन निर्वाह के लिए राजा की दया पर निर्भर होती थी। कौटिल्य का दृष्टिकोण नारी के प्रति संकीर्ण और उपभोग परक था, इसलिए विधवाओं के अधिकारों में उनकी कोई संवेदनशीलता दिखाई नहीं देती।

इस प्रकार, विधवा स्त्री के सम्पत्ति अधिकार प्राचीन भारतीय समाज में बहुत सीमित, असुरक्षित और समय-समय पर विरोधाभासी रहे हैं। प्रारंभ में विधवाओं को आर्थिक अधिकार न मिलने के कारण उनका जीवन अत्यंत असुरक्षित और निर्भरतापूर्ण था, जबकि बाद के उदारवादी दृष्टिकोणों ने उन्हें कुछ संरक्षण और अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया।

स्त्रीधन: नारी की व्यक्तिगत सम्पत्ति

नारी के सम्पत्ति और उत्तराधिकार के विषय में उसकी स्थिति सीमित अधिकारिणी की रही है। हिन्दू कानून और परंपरा में नारी की सम्पत्ति दो प्रकार से देखी जाती है:

(1) स्त्री सम्पदा :- यह वह सम्पत्ति है जिस पर नारी का सीमित स्वत्व होता है। पति की संपत्ति से उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त धन को स्त्री सम्पदा कहा जाता है। नारी इस सम्पत्ति का जीवनपर्यन्त उपयोग कर सकती है, परन्तु इसका अन्तरण, दान या विक्रय विशेष परिस्थितियों में ही कर सकती थी। याने इस पर उसका पूर्ण स्वामित्व नहीं होता था। नारी की मृत्यु के पश्चात यह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी को नहीं, बल्कि अंतिम पुरुषधारक उत्तराधिकारियों को जाती थी।

(2) स्त्रीधन :- यह वह सम्पत्ति है जिसके ऊपर नारी को पूर्ण स्वामित्व और व्यय का अधिकार प्राप्त होता है। स्त्रीधन में नारी न केवल अपनी आवश्यकताओं के अनुसार खर्च कर सकती थी, बल्कि इसे स्वतंत्र रूप से नियंत्रित भी कर सकती थी। इसका अधिकार पूर्णत: नारी के व्यक्तिगत स्वत्व में था और इसे वह अपनी इच्छा अनुसार रख सकती थी।

स्त्रीधन के प्रकार

प्राचीन हिन्दू विधि में स्त्रीधन का अर्थ उस धन से है जिस पर स्त्री का पूर्ण और स्वतंत्र अधिकार माना गया। स्मृतिकारों ने इसकी परिभाषा देने की अपेक्षा इसके प्रकारों का विस्तृत विवेचन किया है। मनु ने स्त्रीधन के छह रूप माने हैं। विवाह के समय अग्नि साक्षी के रूप में पिता आदि द्वारा दिया गया धन अध्यग्नि कहलाता है। पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलने वाली भेंट को अध्यावाहनिक कहा गया। पति द्वारा प्रेमपूर्वक किसी अवसर पर दिया गया धनोपहार प्रीतिदत्त नाम से जाना जाता है, जबकि भाई, माता और पिता द्वारा दिए गए धन को क्रमश: भ्रातृदत्त, मातृदत्त और

पितृदत्त कहा गया है।

मनु इन छह भेदों से अतिरिक्त एक अन्य रूप का उल्लेख भी करते हैं जिसे अन्वाधेय कहा जाता है, जो विवाह के बाद पतिकुल या पितृकुल की ओर से मिला हुआ धन है। मनु इस बात पर विशेष बल देते हैं कि स्त्री द्वारा पति के जीवनकाल में धारण किए गए आभूषणों पर किसी अन्य का अधिकार नहीं है और स्त्री की मृत्यु के पश्चात उनका अधिकार उसके पुत्रों और पुत्रियों को ही प्राप्त होता है। मनु कभी-कभी स्त्रीधन के लिए यौतक शब्द का भी प्रयोग करते हैं। मिताक्षर के अनुसार मनु द्वारा निर्धारित संख्या से कम भेद नहीं हो सकते किंतु अधिक भेद अवश्य हो सकते हैं।

याज्ञवल्क्य ने मनु के छह रूपों में तीन अन्य प्रकारों की वृद्धि की। विवाह के अवसर पर कन्या के मातृपक्ष तथा पितृपक्ष के बंधुओं द्वारा दिया गया धन बन्धुदत्त कहा गया। कन्यादान के समय कन्या के पिता को जो धन मिलता है उसे शुल्क कहा गया तथा विवाह के पश्चात् पतिकुल अथवा पितृकुल की ओर से प्राप्त धन को अन्वाधेय नाम दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि यदि पति दूसरा विवाह करे तो पहले विवाह की पत्नी को उसका संतोष कराने हेतु दिया गया धन भी स्त्रीधन की श्रेणी में आता है। विष्णु द्वारा भी इन रूपों का समर्थन किया गया है।

नारद ने मनु के छह प्रकारों को स्वीकार तो किया, किंतु प्रीतिदत्त धन को केवल पति द्वारा प्राप्त उपहारों तक सीमित करते हुए उसे भर्तुदाय नाम दिया। स्त्रीधन के संबंध में सबसे व्यापक और विस्तृत व्याख्या कात्यायन ने की। उन्होंने मनु, याज्ञवल्क्य, नारद और विष्णु द्वारा बताए गए भेदों को समाहित करते हुए स्त्रीधन के अन्य रूपों का भी निर्धारण किया और कुल सत्ताईस श्लोकों में इसकी विवेचना की। यही कारण है कि मिताक्षरा, दायभाग और स्मृतिचन्द्रिका जैसे ग्रंथों में कात्यायन के मत का व्यापक निरूपण मिलता है।

इस प्रकार स्त्रीधन की संकल्पना समय-समय पर विभिन्न स्मृतिकारों के मतों से विस्तृत होती गई और इसके भेदों की संख्या में वृद्धि भी हुई। इसमें मनु द्वारा प्रदत्त मूल आधार के ऊपर याज्ञवल्क्य, नारद तथा कात्यायन ने क्रमशः व्यापकता प्रदान की।

कात्यायन के मतानुसार बताए गए स्त्रीधन के इन छह रूपों को बिना बुलेट के, स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण और व्याख्यात्मक शैली में इस प्रकार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है—

कात्यायन स्त्रीधन की वर्गीकरण-प्रणाली में विशेष रूप से छह रूपों की चर्चा करते हैं। पहला रूप अध्यग्नि कहलाता है। यह वह धन है जो विवाह के समय अग्नि को साक्षी मानकर पिता या अन्य परिजनों द्वारा नवविवाहिता को प्रदान किया जाता है। इस प्रसंग में विवाह के अवसर पर संबंधियों और अतिथियों द्वारा दी गई भेंटें भी इसी श्रेणी में आती हैं। दूसरे रूप का नाम अध्यावहनिक है। इसका आशय उस धन से है जो कन्या को उसके पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है। इसे उसका वैवाहिक-प्रारम्भिक सम्पत्ति-भाग माना गया है।

तीसरा रूप प्रीतिदत्त कहलाता है। यह वह धन है जो सास और ससुर वधू को प्रेमपूर्वक प्रदान करते हैं। इसमें वह धन भी सम्मिलित है जो वधू को गुरुजनों के चरण स्पर्श या सम्मान-प्रदर्शन के अवसर पर प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रीतिदत्त धन का आधार स्नेह, सम्मान और पारिवारिक स्नेह-संबंध है।

चौथा रूप शुल्क के नाम से वर्णित है। यह वह धन है जो विवाह के समय वस्तुओं, पशुओं, आभूषणों तथा दासों की खरीद-फरोख्त के लिए वर द्वारा मूल्यस्वरूप प्राप्त होता है। कात्यायन इसे भी स्त्रीधन का एक मान्य अंग मानते हैं क्योंकि इसका उद्देश्य कन्या के जीवन और गृहस्थी के आधार का निर्माण करना होता है।

अन्वाधेय स्त्रीधन का पाँचवाँ रूप है। यह वह धन है जो विवाह के उपरांत पतिकुल और पितृकुल के बंधुओं से प्राप्त होता है। इसे विवाहोत्तर भेंट के रूप में देखा जाता है, और मिताक्षरकार भी इसे स्त्रीधन की स्वीकृत कोटि मानते हुए इसकी पुष्टि करते हैं।

छठा रूप सौदायिक के नाम से निर्दिष्ट है। यह वह धन है जो विवाहिता हो या अविवाहिता— उसे पिता के घर या पति के घर में माता, पिता अथवा भाई के द्वारा दिया जाता है। कात्यायन स्पष्ट करते हैं कि यह सौदायिक धन चाहे किसी भी अवसर पर प्रदत्त हो, स्त्री के स्वत्वाधिकार से निर्विवाद रूप से सम्बद्ध है।

इस प्रकार कात्यायन ने न केवल मनु, याज्ञवल्क्य और नारद के कथनों का समाहार किया, बल्कि प्रत्यक्ष सामाजिक व्यवहारों के आधार पर स्त्रीधन की श्रेणियों को अधिक व्यवस्थित, युक्तिसंगत और विस्तृत रूप प्रदान किया।

भरण-पोषण का अधिकार :

स्त्री की आर्थिक स्थिति को समझने के लिये स्मृतियों में किए गए भरण-पोषण संबंधी प्रावधान अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। स्मृतिकारों ने प्राय: एक ही मत रखा है कि पत्नी और अवयस्क संतान का पालन-पोषण पति अथवा पिता का अनिवार्य कर्तव्य है। यही कारण है कि पत्नी को 'भार्या' कहा गया और भरण-पोषण करने वाले पति को 'भर्तृ' कहा गया। धर्मसूत्रों में भी इस दायित्व को पूर्णत: स्वीकार किया गया है। बौधायन धर्मसूत्र में यह कहा गया कि पतिता अर्थात् दुर्बल या निष्कासित माता का भी पोषण पुत्र का धार्मिक कर्तव्य है। इसी प्रकार वसिष्ठ धर्मसूत्र भी इसी भाव को स्वीकार करते हैं।

मनुस्मृति ने पूर्ववर्ती विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए यह उपदेश दिया कि चाहे कितने ही अपराध क्यों न किए हों, वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता स्त्री और शिशु का भरण-पोषण सदैव किया जाना चाहिए। मनु ने यह भी स्पष्ट कहा कि माता-पिता और पत्नी सदा पालन-पोषण के योग्य हैं और इनका परित्याग करने वाला व्यक्ति अपराधी माना जाना चाहिए तथा राजा द्वारा दण्डित भी किया जाना चाहिए। वे भरण-पोषण को केवल सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि धार्मिक कर्तव्य के रूप में स्थापित करते हुए कहते हैं कि पत्नी देवताओं द्वारा प्रदत्त होती है, अत: देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए उसका अन्न, वस्त्र, आभूषण आदि से सदैव पोषण करना चाहिए। इससे यह निर्विवाद स्पष्ट हो जाता है कि मनु के अनुसार पत्नी को पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है।

याज्ञवल्क्य का मत भी इसी आधार को पुष्ट करता है। उनके अनुसार पति को पत्नी का भरण-पोषण अनिवार्यत: करना चाहिए। वे विशेष रूप से कहते हैं कि पुत्रहीन, किंतु सदाचारिणी स्त्री का पालन-पोषण पति का अनिवार्य कर्तव्य है। पत्नी के जीवनाधिकार को इतना महत्वपूर्ण माना गया

कि यदि पति दूसरा विवाह करे तो भी पहली पत्नी का भरण-पोषण उसके ऊपर अनिवार्य दायित्व के रूप में बना रहता है। याज्ञवल्क्य इसे न निभाने वाले को पाप का भागी भी बताते हैं। इस अधिकार को और स्पष्ट करते हुए स्मृतिकार भरण-पोषण हेतु अंश निर्धारित करते हैं—पति द्वारा परित्यक्त, परंतु आज्ञाकारिणी, श्रेष्ठ गुणों वाली पत्नी को पति की सम्पत्ति में तृतीयांश प्राप्त होना चाहिए और यदि पति निर्धन भी हो तो भोजन और वस्त्र जैसी आवश्यकताओं के रूप में उसका पोषण तो अवश्य ही करना होगा।

स्मृतिकार नारद भी भरण-पोषण प्राप्त करने सम्बन्धी अधिकार को आवश्यक मानते हुए उसकी अवहेलना करने वाले पति को राजा द्वारा दण्डित करने का निर्देश देते हैं। उनके अनुसार हितचिन्तनवती, साध्वी एवं सदाचारिणी स्त्री का परित्याग करने वाला पुरुष राजा द्वारा दंड का भागी होता है तथा राजा उस स्त्री को 'भार्या मर्यादा' अर्थात् 'भरण-पोषण सम्बन्धी व्यवस्था देकर व्यवस्थित करता है। विधवा स्त्री की पुत्री का भरण-पोषण एवं विवाहादि पितृधन द्वारा सम्पन्न कराने का निर्देश भी देते हैं। नारद पुत्रहीन स्त्री के पति की मृत्यु के अनन्तर पति पक्ष पर उसकी आत्मरक्षा एवं भरण-पोषण का दायित्व सौंपते है।

कात्यायन तथा कौटिल्य के मतों के आधार पर भरण-पोषण के अधिकार का स्वरूप अत्यन्त विस्तृत रूप में सामने आता है। कात्यायन के अनुसार, पति की मृत्यु के बाद संयुक्त परिवार में रहने वाली पत्नी को जीवनपर्यन्त भोजन, वस्त्रादि के रूप में भरण-पोषण अवश्य प्राप्त रहना चाहिए। उनके मत में यह व्यवस्था भी विद्यमान है कि ऐसी पत्नी अपने पति की सम्पत्ति में से मृत्यु तक का अंश भी प्राप्त कर सकती है। कात्यायन के विधान में यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि किसी मृत पुरुष की सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं है तो उस सम्पत्ति का स्वामी राजा होता है, परन्तु वह इसे केवल अपने अधिकार से नहीं भोग सकता, बल्कि उसे उस सम्पत्ति से मृतक से सम्बन्धित पोष्य स्त्रियों, भृत्यों तथा श्राद्धकर्म एवं अन्त्येष्टि-व्यय के लिए आवश्यक धन अवश्य निकालना होगा। यह विधान स्त्री की आर्थिक सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण संकेत है।

आचार्य कौटिल्य भी भरण-पोषण को एक अनिवार्य सामाजिक-धार्मिक दायित्व मानते हैं। उनके अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी, माता-पिता, अवयस्क बालक, अविवाहित अथवा विधवा बहन आदि का पालन-पोषण नहीं करता तो उसे 12 पण दण्ड दिया जाना चाहिए। कौटिल्य यह भी कहते हैं कि यदि कोई पुरुष पत्नी और संतान के भरण-पोषण की व्यवस्था किए बिना संन्यास ग्रहण कर लेता है, तो राजा उसे प्रथम 'साहस-दण्ड' दे। अर्थशास्त्र में यह निर्देश मिलता है कि यदि किसी स्त्री की भरण-पोषण अवधि निश्चित न हो, तो पति उसके भोजन, वस्त्र आदि का प्रबन्ध करेगा; किन्तु यदि अवधि निश्चित हो और वह स्त्री दहेज, स्त्रीधन या अन्य संपत्ति से हीन हो, तो पति अपनी आय के अनुसार उसे नियमित धन देता रहे।

कौटिल्य इस तथ्य को भी स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी मृतक की सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो, तो राजा उस सम्पत्ति को ग्रहण कर ले, परन्तु मृतक की विधवा के भरण-पोषण तथा उसके श्राद्ध-कर्मों के लिए पर्याप्त धन उसमें से अवश्य छोड़ा जाना चाहिए। इस विधान का उद्देश ?य विधवा को निराश्रय न रहने देना है।

इन सभी मतों से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर आता है कि स्मृतिकारों तथा अर्थशास्त्रकारों ने स्त्री के भरण-पोषण के अधिकार को अत्यंत गंभीरता से स्वीकार किया है। वस्तुतः स्त्री को आर्थिक संरक्षण देने का उद्देश्य केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि आत्मसंरक्षण तथा वंश-संवर्धन की अनिवार्यता से भी सम्बद्ध था। इस दृष्टि से, व्यवस्थाकारों ने घोर व्यभिचारिणी स्त्री के अतिरिक्त लगभग सभी स्त्रियों को भरण-पोषण के अधिकार के भीतर रखा है।

यही प्राचीन विधि-सम्प्रदाय की भावना वर्तमान युग में विधायिका द्वारा स्वीकारते हुए हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 द्वारा पुनः स्थापित की गई, जिसने पत्नी, माता, अविवाहित कन्या और विधवा के संरक्षण के लिए विधिक अधिकार सुनिश्चित किया। इस प्रकार प्राचीन स्मृति-परम्परा का यह सिद्धान्त आधुनिक भारतीय विधि में जीवित और सुदृढ़ है।

निष्कर्षतः भारतीय संस्कृति में पत्नी का सम्मान अत्यन्त ऊँचा माना गया—वह अर्धांगिनी, गृहस्वामिनी एवं परिवार की आधारशिला है। परन्तु जब सम्पत्ति-अधिकार की बात आती है तो उसे बहुत ही सीमित और उपेक्षित स्थान दिया गया। मनु जैसे स्मृतिकार उसे पैतृक सम्पत्ति में अंशनिरहित बताते हैं और उसकी स्वयं की कोई संपत्ति नहीं मानी जाती। पुत्र को पिता की विरासत में अधिकार मिलता है, पर पत्नी को किसी प्रकार का स्वतंत्र अधिकार नहीं—इस प्रकार सामाजिक आदर्श और वैधानिक स्थिति में स्पष्ट विरोधाभास दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2005
2. याज्ञवल्क्य स्मृति प्राचीन, चौखम्बा संस्कृति संस्थान, वाराणसी, 2010
3. मिताक्षरा (विज्ञानेश्वर) 11वीं शताब्दी, जी.डी. कॉलेज फार्मेसी प्रेस, बिहार, 1999
4. 'दाय भाग' जिमुतवाहन, अनुलेख प्रकाशन, कानपुर 2017
5. स्मृति चन्द्रिका, देवल भट्ट, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, दिल्ली 2022
6. अर्थशास्त्र, कौटिल्य, प्रो. खोज प्रकाशन, दिल्ली, 1960
7. प्रमुख धर्म ग्रन्थों में नारी अधिकार, डॉ. ऋतु शुक्ला, हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, 2016
8. स्त्रीधन, चित्रा मुद्गल सृष्टि पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1917
9. नारीवादी राजनीति-संघर्ष एवं मुद्दे, निवेदिता मेमन साधर्ना आर्य, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2006
10. स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली 1988
11. स्त्रियों की स्थिति, श्री चन्द्रावती लखनपाल, दिल्ली, 1990
12. कल्याण, नारी अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, सर्व 2059